





किसने गाया मीरा को?

परिता मुक्ता

प्रस्तुति– रश्मि पालीवाल

यह पुस्तक मीरा नामक व्यक्ति और मीरा की कथा– दोनों का ही समीक्षात्मक इतिहास हमारे सामने रखती है। प्रकाशित साहित्य, फिल्में और कैसेट कंपनियां मीरा की एक खास छवि को उभारती हैं जिसमें मीरा, प्रेम विभोर, कृष्ण भक्त मीरा के रूप में सामने आती हैं। वहीं मौखिक साहित्य मीरा के एक और रूप से हमारा परिचय कराता है – सामाजिक संस्कारों को ठुकराती मीरा, एक नए जीवन की खोज में जुटी मीरा।
लेखिका परिता मुक्ता की विवेचना हमें न सिर्फ मीरा के प्रति अपितु दलितों और मध्यम वर्गीय लोगों के भिन्न-भिन्न विचारों व आदर्शों के प्रति भी पहले से कहीं ज़्यादा विचारपूर्ण बना देती है।

बात जनवरी 1986 की है जब लेखिका राजस्थान के लिए रवाना हुईं – यह सोचकर कि वे मीरा से संबंधित जगहों को देखेंगी और मीरा को उसके अपने सामाजिक संदर्भ में स्थित करने की कोशिश करेंगी। राष्ट्रीय आंदोलन में गांधीजी ने जिस तरह मीरा का आह्वान किया था और गुजरात के मध्यमवर्गीय परिवारों की संस्कृति में मीरा की इससे जो छवि बनी थी, वह छवि उनके मस्तिष्क में छाई थी और वे सोचती थीं कि राजस्थान में तो पग-पग पर मीरा पूजी जाती होगी। पर उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ जब राजस्थान के विद्वानों, इतिहासकारों, लाईब्रेरियनों, अभिलेखागारों के अधिकारियों – सबने एक स्वर में बताया कि राजस्थान में मीरा गाई नहीं जाती। क्या वो इतना नहीं जानतीं कि मीरा जिसे सिसौदिया राजवंश ने तिरस्कृत कर दिया था, राजस्थान में और लोगों द्वारा खुलेआम कैसे गाई जा सकती थी या पूजी जा सकती थी? मीरा ने राजपूतों की इज़्ज़त को धक्का पहुंचाया था और उसका नाम लेना भी जले पर नमक छिड़कने जैसा समझा जाता है। क्या उन्हें इतना भी नहीं पता कि राजस्थान में गिरी हुई औरतों के लिए एक अपशब्द की तरह उपयोग होता है मीरा का नाम!

इन सबने लेखिका को फिर से सोचने पर मजबूर कर दिया कि आखिर मीरा भक्ति के आधार क्या हैं? अगर वह सिर्फ एक करुणामयी, प्रेरणादायक कृष्ण-भक्तिन नहीं रही तो फिर मीरा और क्या थी, और क्या मानी जाती थी? किसके द्वारा मानी जाती थी? अगर यह सच है कि राजपूत मीरा

की स्मृति से ही घृणा करते थे तो मीरा की दंतकथा को बल कहां से मिला? जब उन्होंने यह सवाल राजस्थान के विद्वानों के सामने रखा तो उनका कहना था कि मीरा वास्तव में गुजरात के मध्यमवर्गीय परिवारों की अमानत रही है और राजस्थान में उसकी लोकप्रियता बहुत हाल की बात है। स्वतंत्रता के बाद जब राजवंशों का दबदबा खत्म हुआ, तो मीरा-भक्ति का प्रचलन राजस्थान में फैला। सवाल यह भी है कि मीरा का कुछ तो पुराना आधार रहा होगा, लोकप्रियता रही होगी– नहीं तो गांधी ने ही मीरा को कैसे व क्यों कर अपनाया? लेखिका के लिए यह बहुत ज़रूरी हो गया कि राजस्थान में मीरा के साथ जुड़े सामाजिक तनावों को ध्यान में रखकर मीरा की खोज करे। जब राजपूत उसे नहीं गाते थे – तो किसने गाया था मीरा को?

सवालों की खोजबीन

वे इन सवालों के जवाब मुस्तैदी से ढूंढने की कोशिश करने लगीं। वे गांवों में स्थित मीरा भजन मंडलियों से जुड़ीं। वे मेवाड़ में दूरदराज़ तक घूमीं-फिरीं। उन्होंने हर स्तर के भजनिकों से बातचीत की और राजपूतों से भी ताकि समाज के विभिन्न वर्गों के बीच मीरा के स्थान को समझ पाएं। मेवाड़ में काम के अनुभवों के आधार पर उन्होंने मारवाड़ और सौराष्ट्र में अपने काम को आगे बढ़ाया।

मीरा के इर्द-गिर्द पैदा हुई सामाजिक व सांस्कृतिक अंतर्विरोध की ध्वनियों को समझना और अलग-अलग ऐतिहासिक कालों में मीरा की बदलती छवि को पहचानना उनके काम का मुख्य बिन्दु बना रहा। भजनिकों के आज के जीवन के जीते-जागते मुद्दों और चिन्ताओं से यह काम अनछुआ नहीं रहा। इस बात को लेखिका ने कई बार महसूस किया। जैसे मेवाड़ के एक गांव में औरतों के एक समूह ने मीरा के भजन गाए जिनमें मीरा वैवाहिक संबंधों को ठुकराती है और फिर, यकायक वे औरतें आसपास के गांवों में औरतों की सामाजिक परिस्थितियों पर चर्चा करने लगीं। इसी तरह एक बार सौराष्ट्र के एक गांव में एक दलित परिवार में बैठकर भजन कार्यक्रम सुने जा रहे थे। कार्यक्रम के अंत में भजनिक गांव के ऊंची जाति वालों के रवैये के विरोध में अपनी कड़वाहट, अपना विरोध जाहिर करने लगे। यानी मीरा के भजनों के पैगाम और उन्हें गाने वाले लोगों के जीवन अनुभवों के बीच लगातार एक सहज पुल बना रहा है।

मीरा गाथा विकसित हुई

मीरा की बहुत-सी जीवनियां उपलब्ध हैं। इसके बावजूद उनके जीवन से जुड़ी जो सर्वमान्य, अकाट्य धारणाएं

हैं, वे बहुत थोड़ी-सी ही हैं कि अपनी जाति बिरादरी और कुनबे के कर्त्तव्यों को ठुकरा कर मीरा ने कृष्ण के साथ अपना संबंध निभाया। इस ज़रा सी संक्षेपिका में ही सामन्ती समाज की तनातनी के तार झनझनाते सुनाई पड़ जाते हैं। बस एक और तथ्य मीरा के जीवन से सदा जोड़ा जाता है कि उसे खत्म करने के लिए ज़हर भेजा गया था पर मीरा फिर भी बच गई। इन थोड़ी-सी बातों के अलावा मीरा से संबंधित तमाम जानकारियां 18वीं सदी में लिखे गए एक ग्रंथ पर आधारित हैं– और उससे उभरकर निकली कल्पनाओं व अनुमानों की देन हैं।

लगभग सन् 1600 में नाभदास ने 'भक्माल' का संकलन तैयार किया था। सन् 1712 में प्रियदास ने भक्तमाल पर एक व्याख्या तैयार की। प्रियदास ने इस रचना में मीरा के जीवन का प्रभावपूर्ण वृत्तांत दिया। 18वीं-19वीं-20वीं सदी के इन लेखनों में मीरा एक एकाकी व्यक्तित्व के रूप में सामने आती है जो थोड़ा आश्चर्यजनक लगता है क्योंकि मीरा ने भक्ति का जो जीवन अपनाया था, वो मूल रूप से परस्पर बंधुत्व के नातों पर टिका था।

वृन्दावन के प्रियदास चैतन्य संप्रदाय से जुड़े थे और इस संप्रदाय की लोकप्रियता वृन्दावन के व्यापारियों-व्यवसायियों के बीच थी। 18वीं सदी में उत्तर भारत में व्यापार-व्यवसाय व बाज़ार से जुड़ी प्रक्रियाओं का बोलबाला था। इस व्यावसायिक मध्यमवर्गीय माहौल में मीरा की गाथा उसी रंग में रंगती हुई प्रचलित रही। अपने इर्द-गिर्द के समाज में प्रचलित कहानियां व कहावतें ही प्रियदास के वृत्तान्त का स्रोत बनी होंगी। प्रियदास के वृत्तान्त में राजपूत राजकुमारी मीरा की छवि उभरने के बजाए एक व्यावसायिक मध्यमवर्गीय घराने की बहू की छवि सामने आती है। इस माहौल में मीरा का घरेलूकरण हो चला जो उस संसार से काफी फर्क था जो गरीब समुदायों के बीच गाए जा रहे मीरा के भजनों में सुनाई पड़ता है।

अब देखते हैं मीरा के भजनों का संकलन व लिपिकरण आखिर कैसे हुआ? जिन भी विद्वानों ने मीरा के भजनों के मूल रूप की खोज करने की कोशिश की है वे एक सीमा से आगे नहीं बढ़ पाए हैं। किन्हीं असार्वजनिक पाण्डुलिपियों से संपादित व संकलित किया एक ग्रंथ सन् 1949 में सुकुल ने प्रकाशित किया है। सवाल यह उठता है कि 16वीं से 18वीं शताब्दी में कई भक्त संतों की रचनाएं संकलित हो रही थीं, तो मीरा के भजन संकलित क्यों नहीं हुए? एक कारण यह रहा होगा कि मीरा ने न किसी एक संप्रदाय को अपनाया, न ही किसी संप्रदाय ने

मीरा को। (बल्कि वल्लभ संप्रदाय के साथ मीरा के नकारात्मक संबंध के प्रमाण भी मिलते हैं।) इस अलगाव ने मीरा के भविष्य में किए जाने वाले चित्रण पर काफी असर डाला।

मीरा न सिर्फ संत-संप्रदाय के संकलनों से नदारद रही, बल्कि समकालीन राजपूत राजदरबारों द्वारा लिखवाए गए इति-वृत्तान्तों (जो वार्ता या बात के नाम से जाने जाते हैं) में भी उसका ज़िक्र नहीं मिलता। अत: मीरा का इतिहास बाद के लेखकों व जीवनीकारों (जो बहुधा 19वीं-20वीं सदी में उभरते मध्यमवर्ग में से थे) द्वारा पुनर्रचित किया गया है।

बाद के लेखकों ने एक ओर जहां मीरा के जीवन के सही तथ्यों को बटोरना और कालक्रम में पिरोना शुरू किया (वो कहां की राजकुमारी थी, उसका विवाह किस राणा के साथ हुआ होगा, उसका काल क्या रहा होगा आदि) वहीं उन्होंने उसके इर्द-गिर्द एक देसी रोमांटिक धरोहर को भी बुनने की कोशिश की। लेखकों के इस तरह के नज़रिए ने मीरा जैसे भक्तों को जन-सामान्य में व्याप्त धार्मिक अभिव्यक्ति के बृहत और सामूहिक अहाते से अलगकर व्यक्तिगत कलात्मकता और भावनात्मकता के दायरे में ला खड़ा किया।

अत: 19वीं-20वीं सदी के मध्यमवर्गीय संभ्रात लेखन में घरेलू आदर्शों में ढली, पवित्र एकाकी भक्ति मीरा के साथ जुड़ गई और यही छवि आगे भी भिन्न-भिन्न तरीकों से प्रतिपादित की जाती रही।

मीरा भजनों की बढ़ती शृंखला

आधुनिक लेखक मीरा भजनों के प्रकाशित संस्करणों पर अपना अध्ययन आधारित करते हैं। वे यह तो जानते हैं और स्वीकार करते हैं कि समाज में कई लोगों ने (अधिकतर औरतों ने) मीरा भजनों के भाव से प्रेरित होकर अपने गीत बनाए और उन्हें मीरा के नाम से औरों के सामने रखा। फिर भी शोधकर्त्ता व लेखक मीरा से जुड़ी रचनाओं के इस लोकप्रिय जनाधार का सहारा नहीं लेते।

परिता मुक्ता का ध्येय भी यही था कि मीरा को उन समुदायों के जीवन, श्रम और वाणी के माध्यम से निर्मित किया जाए जो मौखिक परंपरा में सालों से मीरा भजन गाते आए हैं। मीरा के इतिहास को एक सामाजिक मुक्ति के सामूहिक संघर्ष के रूप में खोजते हुए मीरा को उस एकाकीपन और व्यक्तिवाद से रिहा किया जाए जो प्रियदास के समय से आज तक के लेखकों ने उस पर थोपा है।

जिस तरह मीरा समाज की स्मृति में जीवित रही है उससे ऐसा नहीं

लगता कि यह सारी मान्यता सिर्फ उसकी व्यक्तिगत आस्था के प्रति लोगों के सम्मान की देन है। राजस्थान और गुजरात के किसान व कारीगर समुदायों के गायन में मीरा का स्थान खोजने की कोशिश करते हुए लेखिका को महसूस हुआ कि यहां मीरा एक ऐसे व्यक्ति के रूप में उभरती है जो अपना एक समुदाय निर्मित करती है, उसका हिस्सा बन कर जीती है। यह समुदाय ही है जिसके द्वारा स्वीकार किए जाने, अपनाए जाने से, मीरा हर प्रकार का वह सहारा पा सकी जिसके बिना मनुष्य का जीना मुश्किल होता है। इसी स्वीकृति व बंधुत्व ने, वह जनाधार बनाया जिसके कारण समाज के कई समूहों के बीच मीरा और उसकी रचनाओं को याद रखा जा सका और पीढ़ी-दर-पीढ़ी जीवित रखा जा सका।

परिता मुक्ता की इस खोजबीन से सामने आने लगी एक मीरा – जो सौराष्ट्र और राजस्थान के अधीनस्थ व हीन वर्गों द्वारा सामन्ती विशेषा-धिकारी व जातीय मानदण्डों के विरोध के माध्यम के रूप में अपनाई गई।

विवाह, राजपाट और संन्यास

मीरा ने शायद राणा कुंभा से विवाह किया था। उसने पति के साथ संबंध नहीं बनाया। यदि वह कृष्ण प्रेम को अपने हृदय तक सीमित रखती और मन्दिर के अहाते तक सीमित रखती तो शायद यह बर्दाश्त कर लिया जाता। पर उसने अपनी निष्ठा को सार्वजनिक बनाया। भक्तों-संतों से मित्रता रखी, उनके साथ चित्तौड़ के किले में ही नाची-गाई। पति की मृत्यु होने पर वह सती नहीं हुई। आखिरकार उसने चित्तौड़गढ़ का किला ही छोड़ दिया।

राजपूत राजसत्ता मीरा से वह स्वामी भक्ति हासिल नहीं कर पाई जिस स्वामी भक्ति पर उस समाज की बुनियाद टिकी थी। वैसे तो विवाह के समय ही औरत से उसके मायके की पहचान छिन जाती थी, पर मीरा को सदा राठौड़ी मीरा के नाम से पुकारा गया, याद किया गया।

मीरा के एक बहुत प्रचलित भजन से यह पता चलता है कि मीरा शायद चित्तौड़ से निकलकर अपने मायके नहीं गई, वह पुष्कर तीर्थ पहुंची। एक अन्य भजन में मीरा द्वारा कहा जाता है मैं अपने मैके नहीं जाऊंगी।

मेरा मन,
फकीरी में, गरीबी में
फकीरी में, अमीरी में
मेरा मन ऊंची अट्टालिकाओं में नहीं
टूटी झोपड़ी में बसा है,
सुंदर वस्त्रों में नहीं,
फटे चिथड़ों और गेरुए भेष में बसा है,
लाजवाब पकवानों में नहीं
सूखे बासी टुकड़ों में बसा है।

एक और भजन में मीरा कहती है



एक भजन मंडली: मेड़ता मंदिर में गृहणियों की भजन मंडली मीरा भजनों में तल्लीन है। इस मंडली का नेतृत्व एक विधवा ब्राह्मण महिला कर रही है जिसे इस फोटो में सफेद साड़ी पहने हुए देखा जा सकता है।

"तुम मुझे कड़वे कैर से प्रतीत होते हो राणा – मैं तुम्हारे यहां की लोक-लाज, राजसी ठाठ-बाट, तुम्हारा नगर सब छोड़ आई हूं; फिर भी तुमने मुझसे यह बैर क्यों पाला हुआ है?"

एक अन्य भजन है, "राणा मुझसे क्रोधित होता है तो होए, वह मेरा क्या कर लेगा?" इन भावों के भजन दलित-समूहों के बीच आज तक बड़ी उत्कंठा के साथ गाए जाते हैं और उनके जीवन के दर्द को वाणी देते हैं।

एक तरफ स्थापित जातिगत संबंधों को मीरा चुनौती देती है और गरीबों की तरफदारी करती है, तो दूसरी ओर स्थापित स्त्री-पुरुष संबंधों को भी वह ललकारती है। विवाह की अनिवार्यता और पवित्रता पर प्रश्न करते हुए वह कहती है "मेरे लिए यह गृहस्थी का जीवन कड़वा है, खोखला है। विवाह करो और फिर विधवा हो जाओ! मैं क्यों उसके घर जाऊं, प्रिय मोहन! मैंने अपने प्रिय से ब्याह रचाया है और एक अटूट-अमर संबंध हासिल कर लिया है। वैधव्य का भय मैंने समाप्त कर दिया है।"

इस भाव के भजनों को गाते हुए लोग आज भी बेहतर मानवीय संबंधों के अपने सपनों को उजागर करते हैं, आपस में बांटते हैं।

अछूत दस्तकारों की मीरा

यह महज इत्तफाक नहीं था कि मीरा के काल से राजस्थान व गुजरात में बुनकरों और चमड़े का काम करने वालों के वर्ग का खासा विस्तार हो रहा था। इस समय यूरोप के साथ, समुद्री मार्ग से सघन व्यापार शुरू हो चुका था। बुनकरों व चर्मकारों का संबंध विश्व के बाज़ारों व उत्पादन व्यवस्था से बन गया था। लेकिन जाति व्यवस्था में उनकी स्थिति तो परंपरा अनुसार जस-की-तस थी।

16वीं सदी में चमड़ा निकालने वालों, रंगने वालों, चमड़े की चीज़ें बनाने वालों, जुलाहों, बुनकरों की संख्या बढ़ती गई और 17वीं सदी तक इस प्रकार के दस्तकार, समाज का एक प्रभावशाली वर्ग बनकर आगे आ चुके थे।

रोहिदास और मीरा

इस संदर्भ में यह आम मान्यता महत्वपूर्ण है कि मीरा के गुरु थे चमार संत रोहिदास*।

यद्यपि मीरा व रोहिदास के संबंधों के दावे की ऐतिहासिकता पर प्रश्न चिन्ह लगा हुआ है, इस बात के पुरज़ोर संकेत हैं कि लोगों के बीच मीरा को रोहिदास की शिष्या के रूप में व्यापक स्तर पर श्रद्धा हासिल थी।

मीरा भजनों में कपड़ा बुनने से जुड़ी उपमाओं का व्यापक उपयोग है। यह इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि कबीर की तरह मीरा का बुनकर समुदाय से कोई सीधा रिश्ता तो था नहीं। और यह सब मीरा की सामाजिक स्थिति के बिल्कुल विपरीत भी था।

भजन मंडली द्वारा गाए जाने वाले एक भजन में न सिर्फ मीरा का रोहिदास से संबंध स्पष्ट उल्लेखित है, बल्कि खाल निकालने और रंगने के काम को 'हीन' मानने के नज़रिए को उलट कर रख दिया है। भजन की कुछ पंक्तियों का भावार्थ इस तरह से है:

मीरा के मोहन, मेर्तिनी# के देश में आओ।
मैं जानवर की खाल निकालती हूं,
मैं खालें रंगती हूं,
मेरा काम रंगना है।
यह रंगना आता है मुझे,
यह रंगना भाता है मुझे,
मेरी आत्मा इसमें रंग दो,
मीरा के मोहन, मेर्तिनी के देश में आओ।

यहां रोहिदास को स्वीकार कर और उनके काम को मान्यता दे कर, अपने समाज से निष्कासित मीरा समाज के निष्कासित लोगों के साथ एक अभिन्न, अटूट रिश्ते में बंध जाती है।

** रोहिदास यानी संत रविदास हैं।*
मेर्तिनी यानी मेड़ता। मीरा का मायका।

किसानों की मीरा

देवगढ़ के आसपास रहने वाले अंजानिया पटैल, कुन्बी और मीना लोगों ने लेखिका का परिचय एक ऐसी मीरा से कराया जो मध्यमवर्ग में प्रचलित मीरा से बहुत भिन्न थी।

इन किसानों द्वारा गाए गए मीरा भजनों में राणा का ज़बरदस्त मखौल उड़ाया गया है, और मीरा द्वारा चित्तौड़ राजघराने की अवमानना पर बहुत ज़ोर दिया गया है। किसानों से की गई वसूलियां ही तो राणाओं की शक्ति का आधार थीं। यह उल्लेखनीय है कि मीरा भजनों में किसी नामजद राणा का तिरस्कार नहीं होता है बल्कि सामन्ती विशेषधिकारों के प्रतीक के रूप में राणा की भर्त्सना की जाती है।

मीरा दलित समाजों के जीवन में

मीरा 'लोगों की मीरा' का रूप ग्रहण करती है,लोगों द्वारा गाई जाकर। फिर भी, मीरा के अपने व्यक्तित्व और इतिहास में एक माद्दा है जो उसे पूरी तरह अलग-अलग लोगों की धारणाओं के अनुसार ढल जाने से बचाता है। मीरा बीमारियों का इलाज नहीं करती, वह वरदान नहीं देती। उसकी ज़िंदगी के चमत्कार उसके द्वारा



भजन-गायक: वी. दहयाभाई [illegible] मी[illegible] भजनों को बखूबी गाते हैं। यहां द्वारका में वे अंशकालिक मज़दूरों के एक ममूह के बीच भजन गा रहे हैं।

किए गए चमत्कार नहीं हैं जो अपने इर्द-गिर्द के लोगों को अपनी शक्ति से चकाचौंध कर अपने आपको उच्चता प्रदान करते हों। इसके विपरीत, मीरा आत्मिक शक्ति के एक सशक्त प्रतीक के रूप में उभरती है, जिसने मानवीय संबंध बनाए भी और उन संबंधों की विवेचना भी की।

सौराष्ट्र में सबसे ज़्यादा गाया जाने वाला मीरा भजन रोहिदास से संबंधित है, जिसमें वे मीरा से अपने घर लौट जाने का अनुरोध करते हैं। इसे मेर, बघेर, कोली आदि समुदायों में भी गाया जाता है जो दलित नहीं हैं। (भावार्थ)

मीराबाई तू मेरी भक्त है,
मीराबाई तू जानती है कि तू एक राजकुमारी है,
एक राठौड़ी राजकुमारी,
रोहिदास जात का चमार है,
मीराबाई तू घर लौट जा,
मीराबाई राणा बहुत क्रोधित होगा,
वो मुझे जान से मार डालेगा और तुझे लताड़ेगा।
मीराबाई, मैं कहता हूं तुझ से तू घर चली जा।
मीराबाई, तेरा मायका लज्जा में डूब जाएगा,
चित्तौड़ का दुर्ग लज्जा में डूब गया है,
मीराबाई तू घर चली जा।
मीराबाई– तू सुन रही है न लोग तुझ पर लांछन उछाल रहे हैं और वे मुझ पर भी ताने कस रहे हैं,
मीरा जवाब देती है, मेरे प्रभु उन सबको देख लेंगे।
मीराबाई तू घर चली जा
रामानंद के चरण में बसे रोहिदास कहते हैं, मीराबाई, अपने प्रिय की भक्ति न छोड़।

इस भजन में– वो पूरा ऐतिहासिक संघर्ष जीवन्त हो उठता है और हमें उस दौर की एक झलक मुहैया करा देता है। जब यह भजन गाया जाता है तो वहां दलितों के बीच ध्वनित हो उठता है एक गाढ़ा टीसता दर्द, एक नाता बनाने में निहित दर्द, जिसकी धार इस जानकारी से पैनी बनती है कि सामाजिक बहिष्कारों व दण्ड-विधानों के बावजूद मीरा अपने सच्चे नातों के प्रति निष्ठावान बनी रही।

इन भजनों में रोहिदास की आध्यात्मिक शक्ति की भूमिका बहुत साफतौर पर उभरती है, जिसने मीरा के संघर्ष को बल प्रदान किया और उसे राह दिखाई। ये भजन मीरा के नातों के जातीय व वर्गीय आधारों को उकेरते हैं।

मीरा राजपूत इतिहास में

सन् 1818 से 1822 के दौरान कर्नल टॉड ब्रिटिश प्रशासन की ओर से मेवाड़ में पॉलिटिकल एजेंट थे। उन्होंने एक ग्रंथ लिखा (ऐनल्स एंड ऐन्टिक्विटीज़ ऑफ राजस्थान) जो 1829 व 1832 के बीच तीन खंडों

में प्रकाशित हुआ। टॉड ने राजपूतों के इतिहास के बारे में जो कुछ लिखा उसका असर लंबे समय तक बना रहा।

टॉड मीरा को राणा कुंभा की पत्नी बताते हैं और यह अनुमान व्यक्त करते हैं कि उन्हीं से मीरा ने अपना करुणापूर्ण कवित्व प्राप्त किया होगा। उनके कथन में "मीरा अपने समय की सबसे खूबसूरत और सबसे ज़्यादा करुणामयी व प्रेम-विभोर राजकुमारी थी जिसका इतिहास ही एक प्रेमगाथा है।"

इस तरह 19वीं सदी में प्रचलित 'रोमांटिक आदर्शों' के नज़रिए से टॉड मीरा को देखते हैं और इस पक्ष को पकड़ नहीं पाते कि मीरा-भक्ति ने किस तरह राजपूतों की पितृप्रधान सत्ता को ललकारा था।

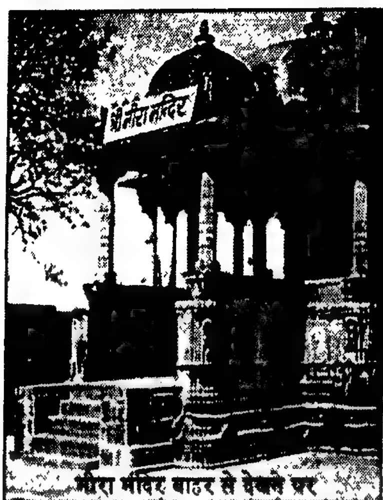
टॉड ने चित्तौड़गढ़ के किले में बने एक मन्दिर को मीरा द्वारा निर्मित मन्दिर करार किया और उनके आधार पर आगे आने वाले सरकारी दस्तावेज़ों में इस मंदिर को मीराबाई के मंदिर के रूप में स्थान मिलने लगा। इस प्रयास से सिसौदिया राजपूतों के इतिहास में मीरा का एक स्थान बन गया। टॉड लिखते हैं, "चित्तौड़ के किले में दो मंदिर कृष्ण के लिए बनाए गए, एक राणा कुंभा के द्वारा बनाया गया और दूसरा उसकी प्रसिद्ध पत्नी प्रमुख कवियत्री, मीराबाई के द्वारा अपने आराध्य शामनाथ के लिए बनवाया गया।"

इससे पहले हमें कहीं भी यह प्रमाण नहीं मिलता कि मीरा ने सिसौदिया के किले में कोई कृष्ण मंदिर बनवाया था।

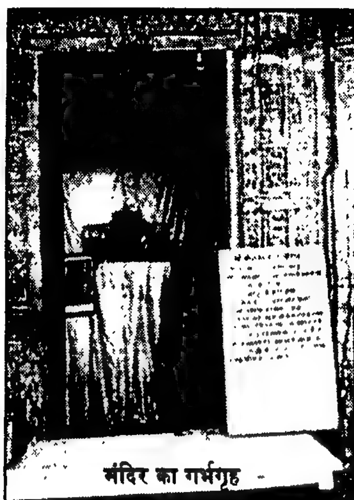
1905 में प्रोग्रेस रिपोर्ट ऑफ द आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ वैस्टर्न इंडिया में इस मंदिर को "जो मीराबाई का मंदिर कहा जाता है" के रूप में प्रस्तुत किया गया है और साथ में यह भी कहा गया है कि यह मंदिर गुहिल राजकुमार कुंभकरण द्वारा बनाया गया प्रतीत होता है और संभवतः इसका राणा सांगा की वधू, मीराबाई से कोई संबंध नहीं था।

मंदिर को लेकर चली आ रही भ्रम की स्थिति सन् 1955 में जाकर समाप्त हो जाती है जब शासन द्वारा इस मंदिर को सार्वजनिक रूप से 'मीरा-मंदिर' घोषित कर दिया जाता है। उसी समय कृष्ण-भक्ति में डूबी मीरा की एक गत्ते की आकृति भी मंदिर में प्रतिष्ठित कर दी जाती है।

कथित मीरा-मंदिर की खोज का घटना क्रम काफी रोचक है। 1933 में लालसिन्हा शक्तावत मेवाड़ के सेटलमेंट अधिकारी थे। जब वे चित्तौड़ गए तो कथित 'मीरा-मंदिर' की जीर्ण-शीर्ण हालत से उन्हें बहुत धक्का लगा। मंदिर अन्दर से खाली भी था। उन्हें लगा कि इसमें मीरा की मूर्ति तो स्थापित की ही जानी चाहिए। दरअसल यह भी एक जानने का विषय है कि



मीरा मंदिर बाहर से देखने पर



मंदिर का गर्भगृह

मीरा मंदिर: चित्तौड़ में यह मंदिर जिसके बारे में शक्तावतजी और राधाकृष्णजी को यकीन था कि यही वह मंदिर है जहां मीरा ने कृष्ण की पूजा-अर्चना की थी। इसे मीरा मंदिर कहा गया। धीरे-धीरे राज्य शासन को भी इस बात पर यकीन होने लगा। अब बच गया मंदिर में मूर्ति की स्थापना का सवाल। उदयपुर राजपरिवार के भोपालसिंह ने गत्ते का रंगा हुआ कृष्ण और मीरा का कटआऊट उपलब्ध करवा दिया और इस तरह मीरा मंदिर का ताना-बाना पूरा हो गया। मंदिर के गर्भगृह में कृष्ण की उपासना करती हुई गत्ते के कटआउट वाली मीरा सुशोभित है।

शक्तावत ने यह पक्का कैसे किया कि वह जीर्ण-शीर्ण मंदिर मीरा का मंदिर था? यह जानकारी हमें श्री राधाकृष्णजी से मिलती है जो शक्तावत के घनिष्ठ थे। राधाकृष्णजी 1987 में 92 वर्ष के वृद्ध पुजारी थे। जब लेखिका ने उनसे भेंट की तो उन्होंने बताया था कि "लालसिन्हा ने इतिहास पढ़ा था और पहले उन्हें लगा था कि यह बड़ा कुंभश्याम मंदिर ही वह मंदिर है जहां मीरा ने पूजा की थी। लेकिन जब पता चला वह आदिवराह का मंदिर है तो उन्होंने सोचा कि यह दूसरा मंदिर ही वह मंदिर होगा जहां मीरा कृष्ण-भक्ति में डूबी हुई भजन गाया करती थी।"

राधाकृष्णजी ने आगे बताया, "जिससे भी मैं मिलता वो मुझसे पूछते – क्या आपको पक्का विश्वास है कि यही मीरा मंदिर है? और मैं हां में जवाब देता। पर मेरे मन में भय था। मैं यकीनी तौर पर यह कैसे कह सकता हूं? तब मैंने चित्तौड़गढ़ के मंदिर के

अहाते में व्रत रखा। रात भर जागता रहा, भजन गाता रहा। शायद वो पूर्णिमा की रात थी। मैं आधी जागी-आधी सोई अवस्था में था, तब मुझे एक आकृति अपनी ओर आती नज़र आई। सफेद कपड़ों में लिपटी, खुले लंबे बालों वाली वह आकृति। मुझे पता था यह मीरा ही है। उसके हाथ में एकतारा था। वो मेरे पास आई और बोली कि मुझे अपने मन के सब भय, अंदेशे मिटा देने चाहिए क्योंकि यही उसका मंदिर है। इतना कहकर वो लुप्त हो गई। उसके बाद से आज तक मुझे मीरा-मंदिर को लेकर कोई शक नहीं हुआ।"

1957-1962 के बीच शक्तावत चित्तौड़गढ़ से विधान सभा के सदस्य थे। उनके प्रयासों से पुरातत्व विभाग ने मीरा-मंदिर का जीर्णोद्धार कार्य पूरा किया। अब सवाल उठा कि मंदिर में प्राण प्रतिष्ठा कैसे की जाए?

शक्तावत और राधाकृष्ण दोनों यह मानते थे कि उदयपुर के महल में रखी एक छोटी कृष्ण मूर्ति ही वह मूर्ति है जिसे मीरा पूजती थी। उन्हें लगता था कि इस मूर्ति को कायदे से मीरा मंदिर के अन्दर होना चाहिए। उनके मांगने पर पहले तो राज परिवार के भोपालसिंह ने हां कर दी; पर बाद में आनाकानी करने लगे। आखिर एक समझौता किया गया। भोपालसिंह ने राजदरबार के एक रंगकार से मीरा और उस कृष्ण की मूर्ति का गत्ते का एक कटआऊट रंगवाया। इस कटआऊट को 2 मई 1955 में शक्तावत ने मंदिर के गर्भगृह में स्थापित किया। बाद में मंदिर के सामने एक चबूतरा बना जिस पर दो पैरों के निशान हैं। ये रोहिदास के चरणों के निशान माने जाते हैं।

आज टूरिज़्म और राजनीति की दुनिया में मीरा बाई के नाम का काफी उपयोग होता है। तो क्या हम यह कह सकते हैं कि राजपूत समाज में मीरा ने अपनी जगह बना ली है?

इस सवाल का जवाब कुछ अनुभवों के मार्फत तलाशने की कोशिश करते हैं। छोठूजी नट कठपुतली का खेल दिखाने वाले परिवार से हैं। वे लोग जब भी किसी नए गांव में खेल दिखाने पहुंचते तो लोगों का ध्यान खींचने के लिए मीरा भजन गाते, इससे लोग तुरन्त इकट्ठा हो जाते थे।

सन् 1972 में छोठूजी सिसौदिया-का-खेड़ा नामक गांव में पहुंचे। यहां कुछ सिसौदिया परिवारों की बस्तियां थीं। जैसा कि वे अक्सर करते थे उन्होंने एक मीरा भजन छेड़ दिया। इकट्ठे हुए लोग उत्तेजित होकर भजन बंद करने के लिए चिल्लाने लगे। एक वृद्ध ने आकर छोठूजी को समझाया "आइन्दा कभी भूल से भी सिसौदिया

के बीच में मीरा भजन न गाना। हम लोग अभी भी मानते हैं कि मीरा ने हमारा नाम कलंकित किया है।'' हालांकि वे लोग राजवी सिसौदिया नहीं गरीब राजपूत थे जो अपने-अपने खेतों में मेहनत करते थे।

इसी तरह जब भट्टी राजपूत महिलाओं से पूछा गया कि क्या वे अपनी बेटी का नाम मीरा रखने की सोचती हैं? इस सवाल के जवाब में एक बहुत अभद्र नकारात्मक प्रतिक्रिया सामने आई।

संन्यासिनियों की भूमि में भी वह औरत जो ईश्वर से अपने तरह से रिश्ता जोड़ती है, अपनी खुद की आस्थाओं को प्रकट करती है और अपनी संगत खुद चुनती है – जो समाज में पितृसत्ता द्वारा निर्धारित रास्तों से हटकर जीती है – अजीब नज़रों से देखी जाती है। 'भक्तिन या भक्तन' आदरसूचक नहीं अपमान सूचक शब्द माना जाता है। भक्तिनी से आशय एक वैश्या तो नहीं होता पर एक ऐसी औरत से होता है जो मुक्त है, स्वच्छन्द है।

राजस्थान में 'तो तू मीराबाई बनी जा रही है' यह वाक्य एक कटाक्ष की तरह उन लड़कियों-औरतों के लिए प्रयुक्त होता है जो लड़कियां या औरतें अपने बुज़ुर्गों की मर्ज़ी से हटकर कुछ करती हैं, ज़ोर से गाती हैं या अपने बाल खुले रखती हैं।

इन सब बातों से इतना तो स्पष्ट हो जाता है कि राजपूत समाज ने अभी भी मीरा को एक संत के रूप में स्वीकार नहीं किया है।

राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान

बींसवीं सदी में जब भारत को एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में निर्मित किया जा रहा था तब मीरा के संदेश को, उसके महत्व को एक नई दिशा देने का प्रयत्न हुआ। आइए देखते हैं कि गांधी ने यह प्रयास किस तरह किया। मीरा के भजन गांधी के आश्रमों में शुरू से ही गाए जाते थे। जैसे 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।'

गांधी के सहयोगी प्रभुदास लिखते हैं कि इन भजनों से गांधी सामाजिक और राजनैतिक बाधाओं का सामना करने की प्रेरणा लेते थे। मीरा के जीवन की कई बातों में गांधी अपने जीवन की छवियां देख पाते होंगे – सत्ता की प्रताड़ना के विरुद्ध मीरा का निर्भय बल, अपने हृदय की राह पर चलने की उसकी दृढता, शान-शौकत छोड़कर, सादगी भरा जीवन जीने की उसकी प्रवृत्ति – यही सब गांधी के जीवन में भी ध्वनित होता था। बनिस्बत इसके, गांधी को वास्तव में मीरा के इतिहास के बारे में बहुत कम पता था।

गांधी के अनुसार सत्याग्रह एक

नैतिक बल है और वही लोग जो एक नैतिक जीवन के प्रति रुझान रखते हैं इसे विवेक के साथ उपयोग में ला सकते हैं। गांधी तो प्रहलाद और मीरा को भी सत्याग्रही का उदाहरण माना करते थे। गांधी ऐसा समझते और प्रस्तुत करते थे कि मीरा अपने पति से प्रेम करती थी और उस प्रेम की खातिर ही, उन्होंने पति को त्यागकर सत्याग्रह किया। गांधी की व्याख्या में मीरा ने लोगों की परवाह नहीं की क्योंकि दरअसल वो अपने पति के प्रति प्रेम के सही अर्थों को तलाशने के लिए ही उनसे अलग हो रही थी।

इन व्याख्याओं में गांधी के मन का द्वंद्व झलक उठता है। एक तरफ वे मीरा में एक जूझता हुआ सत्याग्रही देखते थे। दूसरी ओर वे मीरा में पतिव्रता का आदर्श भी देखना चाहते थे क्योंकि पितृ-प्रधान समाज के ऐसे ही मूल्यों पर वे भविष्य का समाज रचना चाहते थे। वे यह स्थापित करने की कोशिश कर रहे थे कि जिसके विरुद्ध सत्याग्रह किया जा रहा हो उसके विरुद्ध घृणा नहीं पाली जानी चाहिए और मीरा ने भी नहीं पाली। राणा से मिली प्रताड़नाओं को उसने प्रेमपूर्वक स्वीकार किया। गांधी के अनुसार मीरा ने राणा को एक अलग प्रेम, एक अलग जीवन की चाह में नहीं छोड़ा, अपितु राणा को सही राह पर लाने के लिए उसने ऐसा किया।

चित्तौड़गढ़ की गद्दी को ठुकराने वाली मीरा, राणा को कड़वा कैर बताने वाली, राणा से हर प्रकार के संबंध को ठुकराने वाली मीरा – गांधी की जानकारी में नहीं आती। मीरा के गीतों को गाने वाले उस समुदाय के साथ भी गांधी एकात्म नहीं हो पाते जो मीरा के माध्यम से थोपे गए वैवाहिक संबंधों को नकारता है और जो विवाह व वैधव्य की व्यवस्थाओं को ललकारता है। विवाह के मूल को गांधी नहीं नकारते कि पत्नी को पति का अनुयायी होना चाहिए। किन्तु यदि कोई औरत राष्ट्रीय आंदोलन में जुड़ना चाहे और उसका पति ऐसा न चाहे तो? क्या बड़ा है – राष्ट्रीय आंदोलन का उदात्त लक्ष्य या पतिव्रता धर्म? इस द्वन्द्व का उत्तर गांधी मीरा में निकालते हैं। वे कहते हैं, "पत्नी को अपना रास्ता चुनने और विनयपूर्वक उसके परिणामों को भुगतने का पूरा अधिकार है यदि उसका यह प्रतिरोध एक उच्चतर उद्देश्य के लिए किया गया हो।"

यहां भी सवाल है कि इस उच्चतर उद्देश्य की पहचान कौन करेगा? किसको यह हक है? लेखिका यह भांपती है कि गांधी की धारणा में उन जैसा कल्याणकारी अधिनायक औरों को राह दिखाएगा तथा औरों के लिए उद्देश्य तय करेगा। गांधी के विचारों पर गौर करते हुए ऐसा लगता है कि एक तरफ गांधी ने घरेलू जीवन,

विवाह, संयम, धर्म के आदर्शों को मानते हुए उन्हें राजनीति में लागू करने के प्रयास किए और दूसरी ओर इनका 'विवाह' करने की कोशिश भी की न्याय और सत्य के लिए लड़ने के अपने आदर्श से। इस प्रयास में गांधी के विचार द्वंद्व, अन्तर्विरोध और विषमता से घिरे रहे और इसी आइने से उन्होंने मीरा की छवि को उकेरा है।

मीरा के भजनों में व्यक्ति की निजी स्वतंत्रता की ज़बरदस्त वकालत की गई है। अपनी पसन्द के रिश्ते और संगत अपनाने की स्वतंत्रता का मुखर प्रतिपादन किया गया है – वे ईश्वर के साथ हों, समाज में अस्पृश्य करार किए गए लोगों के साथ हों, फटेहाल राहगीरों के साथ हों, दरिद्र भजन गायकों के साथ हों, समाज के हाशिए पर रह रहे लोगों के साथ हों। यह निजी स्वतंत्रता अपने मन की आवाज़ में बसी है, किसी बड़े आदर्श की पुकार में नहीं। इसी बिन्दु पर लेखिका मीरा के संदेश और गांधी के संदेश में मूलभूत अन्तर इंगित करती हैं। उनके विश्लेषण में मीरा के संदेश सबसे निर्धन तबके के लोगों में जीवित रहे; वे लोग जो स्थापित समाजों व धर्मों की व्यवस्था को बदलने के इच्छुक थे। यद्यपि गांधी ने निचले तबके के लोगों से जुड़ने के बहुत ठोस कदम उठाए (जैसे अछूतोद्धार, आश्रम शालाएं, बुनियादी शिक्षा) उनकी व्यापक रणनीति में यह बात भी महत्व रखती थी कि उच्चवर्ण व वर्ग के लोगों, परंपरागत धर्मों को मानने वाले लोगों को भी अपने आंदोलन से जोड़ा जाए। इस तरह अलग-अलग सामाजिक ताकतों के बीच सामंजस्य बिठाने के प्रयास में गांधी उस खुले भाव से, उस पूर्णता से गरीब उपेक्षित वर्गों के साथ नहीं जुड़ पाए जिस तरह मीरा जुड़ पाई थी। सत्ता को ठुकराने की मीरा की मुखरता, सत्ता की छाया से हटकर जीने की उसकी तत्परता ने गीतों की जिन ध्वनियों को जन्म दिया वे ध्वनियां गांधी-दर्शन में नहीं गूंज पाईं।

मीरा की छवि का विस्तार

स्वतंत्रता के बाद के दशकों में मीरा के भजनों का दायरा कैसे विस्तार पाता है यह भी काफी रोचक है। ये भजन भजन-गायकों के समूहों व क्षेत्रीय भाषाओं में गाए जाने से आगे बढ़कर हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के रागों में पिरोए जाने लगे। संगीत समारोह में एकल रूप से गाए जाने लगे। इन नए संदर्भों में ये भजन अपने मूल सामाजिक संदर्भ से कट गए। मीरा पर फिल्में भी बनीं। 1947 में बनी फिल्म में एम.एस. सुब्बलक्ष्मी ने मीरा का किरदार निभाया फिर 1979 में बनी फिल्म 'मीरा' में हेमामालिनी ने मीरा की भूमिका निभाई।

पिछले कुछ दशकों में कैलेण्डर हो





प्रिंट और विजुअल मीडिया: पोस्टरों, तैलचित्रों, कैलेंडरों और फिल्मों के माध्यम से मीरा की जिस छवि को परोसा गया है वह छवि पूर्ववर्ती मौखिक परम्पराओं में महफ़ूज़ छवि से एकदम ही भिन्न है। आज भारत में मध्यमवर्ग ने मीरा को इन्हीं फिल्मों, पोस्टरों या ऑडियो कैसेट के मार्फत जाना है। इनके लिए यह सोच पाना भी कठिन है कि मीरा ने राजपूतों की पितृसत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती दी थी और महल त्यागकर घुमंतू गरीब साधुओं और भजन गायकों के समुदाय का हिस्सा बनकर जीती रही।

या ग्रीटिंग कार्ड या पुस्तकों के कवर – मीरा की छवि जगह-जगह उपयोग की गई है। बहुत से लोग 'मीरा' को बाज़ार में प्रचलित इन्हीं छवियों के द्वारा पहचानते हैं। 19वीं और 20वीं सदी के चित्रकारों ने भी मीरा पर कई चित्र बनाए। मीरा का यह नया रूप गरीब भजन गायकों के बीच जी रही मीरा की छवि से एकदम ही फर्क है।

साथ ही, इस मध्यम वर्गीय संभ्रात छवि ने अपना प्रभाव गरीब समुदायों पर भी डालना शुरू कर दिया है। लोकप्रिय गायकों द्वारा गाए गए मीरा भजनों के कैसेट गांव-गांव पहुंचने लगे हैं। कई ग्रामीण भजन गायक, अपनी परंपरागत शैली छोड़ या उसके अलावा इन लोकप्रिय गीतों की धुनों में मीरा भजन गाने लगे हैं।

कई युवा ग्रामीण भजन गायक, रेडियो कलाकार बन चले हैं। इन सबसे गरीब भजन गायकों के समुदायों में दरारें पड़नी शुरू हो गई हैं। व्यक्तिगत

ख्याति और व्यावसायिकता के प्रभाव को झेलते हुए भी मीरा को गाने वाले कई समूह एक स्वाधीन समाज के सपने को संजोए हुए आपस में एकजुट हैं। अफसोस इस बात का है कि ऐसा कोई राजनैतिक आंदोलन नहीं उभरा जो इन सपनों के साथ जुड़ सके।

मीरा साधो रो संग छोड़ो रे

मीरा ने अपने पति के साथ एक असंतोषजनक संबंध को नकार कर अपने मन की चाहत में डूबकर जीने का निश्चय किया था। सिर्फ निश्चय नहीं प्रयास किया था। साधुओं की संगत अपनाई थी। इस कदम से पितृसत्ता की बुनियाद पर चोट हुई थी – और मीरा ने खुलकर यह चोट की थी। मीरा भजनों की कई पंक्तियां इस खुली चुनौती को व्यक्त करती आई हैं।

"मीरा साधो रो संग छोड़ो रे, छोड़ो रे,
लाजे थारो मेरटो, मेवाड़ लाजे हो।"

किन्तु आज मीरा की कृष्ण-भक्ति पितृसत्ता पर की जाने वाली चोट बन कर विद्यमान नहीं है। राजस्थान और सौराष्ट्र के मध्यमवर्गीय परिवारों में औरतें अपनी अकेली पूजा में या यदा-कदा इकट्ठी होकर, मीरा भजन गाती ज़रूर हैं। इन भजनों में एक कल्पित प्रिय के साथ एक परिपूर्ण संबंध की कल्पना गूंजती है, ये भजन शायद उनके वास्तविक जीवन में थोपे गए अनचाहे असंतोषजनक संबंधों की वेदना पर मरहम-पट्टी लगाते हैं। अंततः परिणाम यह होता है कि औरतें ज़्यादा परिपूर्ण संबंधों की चाहत मन में रखते हुए भी स्थापित संबंधों व सामाजिक नियमों को निभाती रहती हैं। यह एक किस्म की 'निजी भक्ति' है। एक अकेले, अक्षम व्यक्ति की भावभीनी पनाह, जहां वह कुछ सुकून पाकर फिर अपने जीवन के दुखड़ों को ढोने लौट पड़े लेकिन उसे तोड़ने और बदलने को प्रेरित न हो। आज के इस संदर्भ में मीरा-भजनों की पंक्तियों में भी संशोधन होते जा रहे हैं। "मीरा साधो रो संग छोड़ो रे" वाले भजन को अब जब मध्यमवर्गीय परिवेशों में गाया जाता है तो एक दूसरी पंक्ति बहुत दोहराई जाती है– "घुंघरू छमा छम बाजे रे, बाजे रे, निज मंदिर रे माई मीरा उबी नाचे रे"। इन पंक्तियों को बार-बार दोहराने से गाने की भावना ही बदल-सी जाती है और मीरा की एक सम्मोहिनी नारी की छवि सामने आती है।

अब तो मंदिर के अहाते हो या लोगों के घर, फिल्मी धुनों पर मीरा के फिल्मी अन्दाज़ के भजन सुनने को मिलते ही रहते हैं। ये गीत दिल की चाहतों को नम तो रखते हैं, पर पपीहे की प्यास नहीं बुझा सकते। इनसे स्वाधीन जीवन के आसार नहीं बढ़ते

बंदिशों की दीवारें नहीं टूटती। एकाकी मन ज़्यादा सशक्त नहीं होता परिवर्तित नहीं होता, तड़पता रहता है। अलग-अलग दौर में मीरा के बदलते अर्थों को देखने के बाद आइए यह भी जान लें कि मीरा के भजनों से उसके शेष जीवन पर क्या प्रकाश पड़ता है।

फकीरी और अंत

मीरा के भजनों से ही यह जानकारी भी मिल जाती है कि घर-बार छोड़ने के बाद मीरा कष्टों व संकटों के बीच कैसे जीती रही। सबसे पहले तो उसके प्राणों को सिसौदियों के बैर से ही खतरा था। मीरा का खात्मा इसलिए ज़रूरी नहीं था कि वह गिरधर की भक्त थी। वह इसलिए ज़रूरी था क्योंकि उसने राजपूतों की इज़्ज़त पर चोट की थी। इसके बावजूद मीरा को मारा न जा सका। उसके लिए समर्थन और सहानुभूति के कई स्रोत रहे ही होंगे। तभी चित्तौड़ के किले में मीरा के पास भेजा गया विष का प्याला जब मीरा के पास पहुंचा तो उसमें विष नहीं था।

चित्तौड़ छोड़कर मीरा घूमते, गाते-बजाते द्वारका पहुंची। वह फकीरों-साधों के बीच रहने लगी।

एक भजन इस प्रकार है – "जोगिन बनके मैंने एक जीवन से हाथ धो लिया है, हाथ में एक झोली लिए मैं घर-घर भीख मांगती फिरती हूं, हम बड़भागे नहीं है राणा, मैं बहुत गरीब हूं। मीराबाई गिरधर के गुण गाती है हम उसकी भक्ति से ही सुख पाते हैं।"

मीरा किसी संप्रदाय का हिस्सा नहीं बनी, किसी मठ की स्वामी भी नहीं। घुमंतू गरीब साधुओं और भजन गायकों के समुदाय का हिस्सा बनकर वह जीती है और अपनी वाणी से, संदेश से उस समुदाय को विकसित करती है।

तमाम संकटों के बीच मीरा कैसे जीती रही– यह कई भजनों में पाया गया है। पर एक भी भजन यह नहीं बताता कि मीरा का अंत कैसे हुआ। दंतकथाओं में मीरा द्वारका के मंदिर में रखी कृष्ण की मूर्ति में विलीन हो गई और फिर वापिस नहीं आई। ऐसा तब हुआ बताया जाता है जब राणा उदयसिंह के दो संदेशवाहक द्वारका में उससे आकर मिले और उसे वापिस ले जाने की हठ करने लगे। तब मीरा मंदिर के गर्भगृह में गई और कृष्ण की मूर्ति में विलीन हो गई। यह कथा भी गरीब भजन गायकों के बीच प्रचलित नहीं है। यह कथा भी मध्यमवर्गीय लेखकों आदि की देन प्रतीत होती है।

क्या हुआ यह तो नहीं जाना जा सकता। कुछ अनुमान ज़रूर लगाए जा सकते हैं जैसे – शायद राणा के आदमियों ने उसे मार डाला, शायद उसने आत्महत्या की, शायद वह मंदिर के पीछे से भाग निकली और

दूर किसी इलाके में जीती रही?

जिस साहस के साथ मीरा ने अपनी राह बनाई और नए रिश्ते-नाते जोड़े, उसके संदर्भ में आत्महत्या संभव नहीं लगती। दूसरी तरफ राजपूतों में बैर और बदला लेने की कोशिशों की गंभीरता कम नहीं आंकी जा सकती और इसलिए यह संभव लगता है कि शायद उन्होंने मीरा को खत्म कर दिया हो। पर मीरा भजन गाने वाले समुदाय इस संभावना को कतई स्वीकार नहीं करते। उनकी धारणा में, स्मृति में, मीरा हर खतरे से उबर सकी थी।

* * *

यहां लेखिका तय करती है कि इस प्रश्न का कोई हल न खोजना ही ठीक है। आखिर किसलिए शहादत की महिमा मीरा को ओढ़ाई जाए? क्यों न उसे लोगों के बीच जीता हुआ ही छोड़ दिया जाए जैसे वो उनकी उम्मीद, उनका सपना, बन बरसों से जीती आई है?

परिता मुक्ता: संडरलैंड विश्वविद्यालय, इंग्लैंड के स्कूल ऑफ सोशियल एंड इंटरनेशनल स्टडीज़ विभाग से जुड़ी हैं। विविध महिला आंदोलनों से संबद्ध हैं।

रश्मि पालीवाल: एकलव्य के सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम से संबद्ध हैं।

यह लेख परिता मुक्ता द्वारा लिखी गई किताब 'अपहोल्डिंग द कॉमन लाईफ – द कम्युनिटी ऑफ मीरा बाई; (प्रकाशक: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस) से साभार।

